गङ्गेश्वर-ग्रन्थमाला : प्रसून—३

5·/

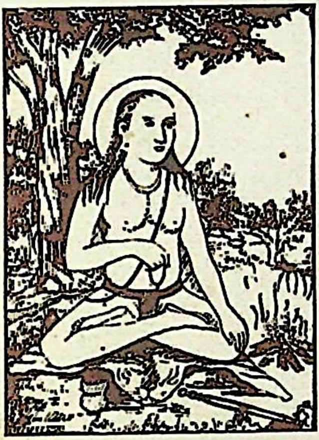

जगद्गुरु

श्री श्रीचन्द्राचार्य कृत

मा त्रा शा स्त्र

श्री स्वामी रामस्वरूप सम्पादक कृत
'भावप्रसादिनी' संस्कृत व्याख्या
श्री स्वामी योगीन्द्रानन्द कृत
'विमला' हिन्दी व्याख्यासहित

प्रकाशक
श्री गोविन्दराम सेऊमल
२८७, घोड़बन्दर रोड
बान्द्रा, बम्बई

महाशिवरात्रि
२०२१ वै०

मूल्य :
सभक्ति पाठ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

सम्पादकीय

जगद्गुरु भगवान् श्री श्रीचन्द्राचार्य का मात्राशास्त्र क्या है और उसको क्या अलौकिक महत्त्व है, इस सम्बन्ध में 'योगेश्वर गुरु गङ्गेश्वर'[1] ग्रन्थ के द्वितीय प्रकरण में विस्तार से वर्णित है। उदासीन साम्प्रदायिकों के लिए तो यह पञ्चम वेद है।

उक्त सम्पूर्ण मात्राशास्त्र, श्रीस्वामी रामस्वरूपजी सम्पादककृत 'भाव प्रसादिनी' नामक पद्यमय संस्कृत व्याख्या और श्री स्वामी योगीन्द्रानन्दजीकृत 'विमला' नामक भावप्रसादिनी की हिन्दी व्याख्या के साथ साधकों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है। पाठकी सुविधा के लिए आरम्भ में मूलपाठ भी दिया गया है। आशा है, भावुकजन इससे लाभ उठायेंगे।

—गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

---

१. यह पुस्तक पूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी महाराज उदासीन का दिव्य चरित्र है, जो डवल डिमाई साइज के ४६८ पृष्ठों से मुद्रित है। इसका मूल्य ५) है और प्राप्ति स्थान उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, ढुण्ढिराज, वाराणसी है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूळ मात्राशास्त्र

संस्कृत-हिन्दी व्याख्यासहित

कहु रे वाल ! किसने मूँडा किसने मुँडाया ।
किसका भेजा नगरी आया ॥ १ ॥
सद्‌गुरु मूँडा लेख मुँडाया ।
गुरु का भेजा नगरी आया ॥ २ ॥
चेतहु नगरी तारहु गाँव ।
अलख पुरुप का सुमिरहु नाँव ॥ ३ ॥
गुरु अविनाशी खेल रचाया ।
अगम निगम का पन्थ वताया ॥ ४ ॥
ज्ञान की गोदड़ी खिमा की टोपी ।
यत का आड़वन्द शील लँगोटी ॥ ५ ॥
अकाल खिन्था निराश झोली ।
युक्ति का टोप गुरुमुखी वोली ॥ ६ ॥
धर्म का चोला सत्य की सेली ।
मर्यादा मेखला लै गले मेली ॥ ७ ॥
ध्यान का वटुआ नृत्त का सूइदान ।
ब्रह्म अञ्चला लै पहिरै सुजान ॥ ८ ॥
वहुरंगी मोरछड़ निर्लेप विष्टी ।
निर्भव जंगडोरा ना को द्विष्टी ॥ ९ ॥
जाप जंगोटा सिफत उड़ानी ।
सिंगी शव्द अनाहत गुरुवाणी ॥ १० ॥
शर्म की मुद्रा शिव विभूता ।
हरिभक्ति मृगानि लै पहिरै गुरुपूता ॥ ११ ॥
सन्तोप सूत विवेक धागे ।
अनेक टल्ले जहँ लागे ॥ १२ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुरति की सुई लै सद्गुरु सीवै।
जो राखै सो निर्भउ थीवै ॥ १३ ॥
स्याह सफेद जरद सुरखाई।
जो लै पहिरै सो गुरुभाई ॥ १४ ॥
त्रैगुण चकमक अग्नि मथ पाई।
दुःख सुख धूनी देहि जलाई ॥ १५ ॥
संयम कपाली शोभा धारी।
चरण कमल में सुरति हमारी ॥ १६ ॥
भाव भोजन अमृत कर पाया।
भला वुरा मन नहीं वसाया ॥ १७ ॥
पात्र विचार फरुआ वहुगुणा।
करमण्डल तुम्बा किश्ती घणा ॥ १८ ॥
अमृत प्याला उदक मन दिया।
जो पीवे सो सीतल भया ॥ १९ ॥
इडा में आवे पिङ्गला में धावे।
सुषमन के घर सहज समावे ॥ २० ॥
निराश मठ निरन्तर ध्यान।
निर्भौ नगरी दीपक गुरुज्ञान ॥ २१ ॥
स्थिर ऋद्धि अमरपद दण्डा।
धीरज फहुड़ी तप कर खण्डा ॥ २२ ॥
वश कर आसा समदृष्टि चउगान।
हर्षशोक नहिं मन में आन ॥ २३ ॥
सहज विरागी करे वैराग।
माया मोहनी सकल त्याग ॥ २४ ॥
नाम की पाखर पवन का घोड़ा।
निःकर्म जीन तत्त्वकर जोड़ा ॥ २५ ॥
निर्गुण ढाल गुरुशब्द कमान।
अकल संजोह प्रीति के वाण ॥ २६ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अकल की बरछी गुणों की कटारी ।
मन को मारि करौ असवारी ॥ २७ ॥
विषम गढ तोड़ निर्भौ घर आया ।
नौवत शङ्ख नगारा वाया ॥ २८ ॥
गुरु अविनाशी सूषम वेद ।
निर्वाण विद्या अपार भेद ॥ २९ ॥
अखण्ड जनेऊ निर्मल धोती ।
सोहं जाप सच माल पिरोती ॥ ३० ॥
सिखा गुरुमन्त्र गायत्री हरिनाम ।
निश्चल आसंन कर विश्राम ॥ ३१ ॥
तिलक सँपूर्ण तर्पण यश ।
पूजा प्रेम भोग महारस ॥ ३२ ॥
निर्वैर सन्ध्या दर्शन छापा ।
वाद विवाद मिटाओ आपा ॥ ३३ ॥
प्रीति पिताम्वर मन मृगछाला ।
चीत चितम्वर रुण झुण माला ॥ ३४ ॥
वुद्धि वघम्वर कुलह पोस्तीन ।
खाँस खड़ावाँ इह मति लीन ॥ ३५ ॥
तोड़ा चूड़ा और जँजीर ।
ले पहिरै साधु उदासी धीर ॥ ३६ ॥
जटा जूट मुकुट सिर होइ ।
मुक्ता फिरे वन्ध नहिं कोइ ॥ ३७ ॥
नानकपूता श्रीचन्द वोले ।
जुगत पछाणे तत्त्व विरोले ॥ ३८ ॥
ऐसी मात्रा ले पहिरे कोय ।
आवागमन मिटावे सोय ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री श्रीचन्द्राचार्यकृतं मात्राशास्त्रम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मात्राशास्त्र

संस्कृत-हिन्दी व्याख्यासहित

भावप्रसादिनी

यद्रूपपरूपणेऽनीशा वाक्केशशेषकेशवाः ।
सन्त ईशा यदात्मानस्तस्मै ब्रह्मण ओन्नमः ॥ १ ॥

विमला

सहस्रधारके यस्मिन् ऋषयो नो मनीषिणः ।
पुनन्ति स्वं वचस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

जिस परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण करने में सरस्वती, ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग तथा भगवान् विष्णु असमर्थ रहे; केवल परमेश्वर के स्वरूपभूत महात्मा सक्षम हो सके, उस परमेश्वर को नमस्कार है ॥ १ ॥

विघ्नग्रासासुरत्रास-जगद्भासस्मरासुप ।
पञ्चास्याध्यासतद्ब्रह्म शक्तिपञ्चकमाश्रये ॥ २ ॥

गणेश, विष्णु, सूर्य, शंकर और सिंहारूढ़ा भगवती—ब्रह्म की इन पाँच शक्तियों की शरण लेता हूँ ॥ २ ॥

अप्पयांसीव हंसो यो विमिश्रिते ऋतानृते ।
विविच्य बोधयामास नंनम्यः साद्यिमो गुरुः ॥ ३ ॥

जिसने नीर-क्षीर के समान मिश्रित सत्य और मिथ्या को पृथक् कर दिखाया, वह आद्याचार्य भगवान् हंसावतार सतत नमस्करणीय हैं ॥ ३ ॥

तल्लब्धौदास्यमार्गे य आजीवनं स्थितः स्वयम् ।
अन्यांश्च स्थापयामास वैधात्रं तं मुनिं नुमः ॥ ४ ॥

उस हंसावतार द्वारा प्रवर्तित उदासीन-सम्प्रदाय में स्वयं आजीवन रहकर जिनने औरों को भी इस पुनीत मार्ग में दीक्षित किया, उन महामुनि, ब्रह्मा के मानसपुत्र, श्री सनत्कुमार को हम सब नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

श्रौतवंशे समुद्भूताः श्रौतवंशेन दीक्षिताः ।
श्रौतसिद्धान्तविस्ताराः पान्तु श्रौतमुनीश्वराः ॥ ५ ॥

वेदिवंश में अवतीर्ण, श्रौतमुनि आचार्य अविनाशी द्वारा दीक्षित, वैदिक सिद्धान्त के प्रसारक, भगवान् श्रीचन्द्राचार्य हम सबकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हंससनत्कुमाराद्यां श्रीचन्द्रगुरुमध्यमाम् ।
अस्मद्देशिकपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥ ६ ॥

जिस गुरु-परम्परा के आरम्भ में हंसावतार और सनत्कुमार, मध्य में श्री श्रीचन्द्राचार्य और अन्त में हमारे गुरुवर विराजमान हैं; उस गुरु-परम्परा की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ६ ॥

कविकुलस्य कान्तो नो नाचार्यो वेददर्शने ।
साङ्ख्ये योगे च वेदान्ते न तीर्थो न च शास्त्र्यहम् ॥ ७ ॥
पदवाक्यप्रमाणानामुपाधिः कोऽपि नो मयि ।
अहमल्पश्रुतिर्जीवो गौरर्वा गीर्बहुश्रुतिः ॥ ८ ॥
इयन्माना मतिर्मेऽस्ति व्याख्यानानुपयोगिनी ।
प्लवेन बालभावेन तितीर्षुरस्मि सागरम् ॥ ९ ॥

मैं न कवि-कान्त हूँ, न वेद-दर्शनाचार्य, न सांख्य, योग और वेदान्त का तीर्थ हूँ और न किसी विषय का शास्त्री अर्थात् व्याकरण, मीमांसा और न्याय आदि की कोई पदवी मेरे पास नहीं है। मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति हूँ। किन्तु जगद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्राचार्य की वाणी श्रुतियों का भण्डार है। इस प्रकार की मेरी तुच्छ बुद्धि श्रीचन्द्र-मात्रा की व्याख्या करने की क्षमता नहीं रखती। फिर भी बालकपन की छोटी नैया के सहारे महासागर को पार करना चाहता हूँ ॥ ७–९ ॥

यथामति गृणन्तो हि न वाच्या इति नीतितः ।
अनुगृह्णन्तु सन्तोऽतोऽसन्तः कामं हसन्तु हि ॥ १० ॥

यथाशक्ति कहनेवाले दोषी नहीं ठहराये जाते, अतः सन्तगण मुझ पर अनुग्रह बनाये रखें, भले ही दुर्जन मेरी हँसी उड़ाते रहें ॥ १० ॥

यन्मात्रागुरुनुन्नोऽहं मात्राव्याख्यान उद्यतः ।
उपालम्भोऽपि तस्यातः सर्वं यत्तत्पदार्पितम् ॥ ११ ॥

जिस मात्रा-शास्त्र के उपदेष्टा गुरु की प्रेरणा से मैं मात्रा के व्याख्यान में प्रवृत्त हुआ हूँ, उपालम्भ भी उसीको देना चाहिए; मैं तो सब कुछ उसके चरणों में अर्पित कर चुका हूँ ॥ ११ ॥

सर्मायुरेकदाऽसङ्ख्या भिन्नभिन्नमतानुगाः ।
ते सर्वे स्थापयामासुः स्वैरं स्वं स्वं मतं मुदा ॥ १२ ॥

किसी समय विभिन्न सम्प्रदाय के अनुयायी अनेक महात्मा एकत्र हुए, उन्होंने पृथक्-पृथक् अपने मत प्रस्तुत किये ॥ १२ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मनिष्ठो गुरुः पृष्टः श्रीचन्द्रः प्रास्य तन्मतम् ।
वक्तुं प्रचक्रमे पूर्वं स्वं मतं देवभाषया ॥ १३ ॥
केषाञ्चिदनुरोधेन भव्यभारतभाषया ।
परमुपादिशत्तत्त्वं शास्त्रं मात्राभिधानकम् ॥ १४ ॥

जब श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ आचार्य भगवान् श्रीचन्द्राचार्य से पूछा गया, तब आचार्य ने पहले सभी मतों का निराकरण कर अपना सिद्धान्त संस्कृत भाषा में कहना आरम्भ किया। किन्तु कुछ व्यक्तियों के अनुरोध करने पर जनसाधारण की भाषा हिन्दी में उपदेश किया। वही उपदेश मात्रा-शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १३-१४ ॥

उदासिनामिदं प्रेयः प्रत्यहं यदधीयते ।
एतस्स्वाध्यायहीनो यः सोदासीनो मतो नहि ॥ १५ ॥

उदासीन मुनियों को यह मात्रा अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि वे नित्य इसका जप-पारायण किया करते हैं। इसके स्वाध्याय से वञ्चित व्यक्ति को उदासीन नहीं माना जाता ॥ १५ ॥

मात्राशब्दः क्विबन्तो ना मायाः संत्रायतेऽर्थतः ।
सुपि योगविभागेन कः प्रत्ययोऽपि सम्मतः ॥ १६ ॥
स्त्रीत्वे टापि च शब्देऽस्मिन्नर्थोऽपि न विभिद्यते ।
अर्थान्तरं भवेद्व्यङ्ग्यमित्यपि वार्यते न हि ॥ १७ ॥

'मात्रा' शब्द की सिद्धि इस प्रकार है—'त्रैङ् पालने' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय करने पर दीर्घाकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द 'त्रा' बना। 'मायाः + त्रा = मात्रा' अर्थात् माया से रक्षा करनेवाला बोध। अथवा 'त्रैङ्' धातु से 'सुपि च' योग-विभाग करके 'क' प्रत्यय किया गया। तदनन्तर 'टाप्' करके स्त्रीलिङ्ग 'त्रा' शब्द निष्पन्न होता है। इस पक्ष में भी अर्थ वही रहा—माया से रक्षा करनेवाली विद्या। 'मात्रा' शब्द अन्यान्य अर्थों का व्यञ्जक है, इसका भी निवारण नहीं किया जाता ॥ १६-१७ ॥

मात्रातनूतनुत्वेऽनुयोगानां सुगमत्वतः ।
गुरुणा करुणार्द्रेणासूत्रि सूत्तरमत्र वै ॥ १८ ॥

मात्रा-शास्त्र का कलेवर छोटा रखने के लिए करुणार्णव आचार्य ने केवल उत्तर ही इसमें रखे। विभिन्न मतावलम्बियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उल्लेख नहीं किया, क्योंकि वे अत्यन्त सुगम हैं ॥ १८ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सङ्गतिरत्र सर्वत्र सूत्राणां न निभाल्यताम्।
वैविध्यमनुयोक्तॄणां हेतुमत्रावगच्छत ॥ १९ ॥

इस शास्त्र के सूत्रों में सर्वत्र पूर्वापर की संगति नहीं खोजनी चाहिए, क्योंकि प्रश्नकर्ता अनेक थे, जब जिसका प्रश्न हुआ, तब उसका उत्तर दिया गया। विविध-विषयक उत्तरों का यही कारण है ॥ १९ ॥

नैकजन्मार्जिताईन्तीं समालोच्याधिकारितः।
कन्थादिविविधं प्रोक्तं पुनरुक्तिरतो न हि ॥ २० ॥

'ज्ञान की गोदड़ी', 'अकाल खिन्था' आदि स्थलों पर पुनरुक्ति दोष नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि अधिकारियों की अनेकजन्मार्जित पुण्य-प्रसूत योग्यताओं के अनुसार विविध कन्था आदि का उपदेश किया गया है ॥ २० ॥

परिदधतु कन्थादीन् यथारुचि न वार्यते।
तेषां तु मुक्त्यहेतुत्वं गुरुणाऽत्र विबोध्यते ॥ २१ ॥
तत्त्वमस्यादिबोधादि तत्स्थानेपूपदिश्यते।
भवव्याधेर्निवृत्तिः स्यान्नूनमात्यन्तिकी यतः ॥ २२ ॥

'ज्ञान की गोदड़ी' कह देने से कपड़े की गोदड़ी के धारण का निषेध अभिप्रेत नहीं, क्योंकि आचार्य केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि गोदड़ी आदि बाह्य चिह्न मुक्ति के हेतु नहीं। हाँ, उनके स्थान पर 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों का उपदेश इसलिए किया गया है कि उन वाक्यों से जन्य बोध द्वारा ही संसार-रोग की आत्यन्तिकी निवृत्ति होती है ॥ २१-२२ ॥

परोक्तं तु विहायात्र स्वकीयार्थपदं समम्।
श्रौतं शास्त्रीयमुद्दिष्टं सुगमं निर्विभक्तिकम् ॥ २३ ॥
निगमागमयोरास्था तज्ज्ञताऽतश्च दर्शिता।
अनुकुर्युरुदासीना इदमादिश्यते स्फुटम् ॥ २४ ॥

विभिन्न प्राश्निकों द्वारा बोले गये अरबी, फारसी के शब्दों को छोड़कर आचार्य ने शुद्ध शास्त्रीय विभक्ति-रहित संस्कृत पद ही प्रयुक्त किये हैं। इस प्रकार वेद-शास्त्रों की अपनी निष्ठा और अभिज्ञता प्रदर्शित कर उदासीन विद्वानों को यह स्पष्ट आदेश दिया है कि वे भी वैसा ही करें ॥ २३-२४ ॥

जन्मना श्रौतवंशोऽहं नानकपूतसूक्तितः।
[illegible]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"निगमागम का पन्थ चलाया" इति वाक्यतः ।
अस्म्यहं श्रौतसिद्धान्त इत्युद्घोषणा गुरोः ॥ २६ ॥

जगद्गुरु श्रीचन्द्राचार्य ने 'नानकपूता' कहकर अपने को जन्मना वेदिवंशी, 'गुरु अविनाशी' कहकर दीक्षा द्वारा श्रौतमुनि और 'निगमागम का पन्थ बताया' इस वाक्य से श्रौतसिद्धान्तावलम्बी उद्घोषित किया है ॥ २५-२६ ॥

प्रयुक्ता गुरुणा सार्ध्वा कलामात्राचतुष्पदी ।
चिरात्पाठार्थसौकर्ये की लै केत्यादि वर्धितम् ॥ २७ ॥
अतस्तन्निरासाय यदि यत्नो विधीयते ।
परिवृत्तिर्गुरोः पाठे भवेत्स्यां वाच्यतास्पदम् ॥ २८ ॥

आचार्य ने इस मात्राशास्त्र में हिन्दी के 'चौपाई' छन्द का प्रयोग किया है, किन्तु पाठ की सुकरता एवं अर्थ की सुगमता के लिए कहीं-कहीं 'की', 'लै', 'का' आदि शब्द अधिक जोड़ दिये हैं। अतः यदि उन अधिक पदों को हटाने का यत्न किया जाय, तो आचार्य के मन्त्र-पाठ में परिवर्तन होगा एवं सम्प्रदाय के आक्षेपों की भरमार होगी ॥ २७-२८ ॥

शब्दाल्पतार्थबाहुल्य - विरोधासत्त्व-सूत्रताः ।
सच्छ्रुतिसम्मतोऽर्थश्च मात्रायां निखिला गुणाः ॥ २९ ॥

इस मात्राशास्त्र में शब्दों की अल्पता, अर्थ की बहुलता, विरोधाभाव, सूत्र-रूपता तथा वेदसम्मत अर्थ के प्रतिपादन की क्षमता आदि निखिल गुण विद्य-मान हैं ॥ २९ ॥

अस्ति विद्वद्द्वयेऽनल्पं मात्रोपनिषदन्तरम् ।
पदपदार्थसङ्कर्षं आद्या पराऽतिशायिनी ॥ ३० ॥
मायास्त्राणे यथेष्टं स्यान्मुक्तिः स्वमतसम्मता ।
उपनिषद्गुपस्थाप्या स्वैक्योपनिषद्यता ॥ ३१ ॥

विद्वानों की दृष्टि में 'मात्रा' और 'उपनिषत्' शब्दों में बहुत अन्तर है। 'उपनिषत्' शब्द पद-पदार्थों के घोर संघर्ष में फँसा है, किन्तु 'मात्रा' शब्द उस संघर्ष से परे है। 'मात्रा' शब्द माया से संरक्षण करनेवाली ब्रह्मविद्या को कहता है, जिससे स्वमत-सम्मत मुक्ति सिद्ध होती है। किन्तु 'उपनिषत्' शब्द तो केवल गुरु के समीप में उपस्थिति मात्र का बोधक है ॥ ३०-३१ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहु रे बाल ! किसने मूँडा किसने मुँडाया।
किसका भेजा नगरी आया ॥ १ ॥

कथय बाल रे केन मुण्डितः केन बोधितः।
केन प्रेपित आयास्त्वं नगरीं पावनाद् वनात् ॥ ३२ ॥

कह रे बालक ! तू किसका मूँडा है—किससे ज्ञान प्राप्त किया और किसका भेजा पावन वन से नगरी में आया है ? ॥ ३२ ॥

सद्‌गुरु मूँडा लेख मुँडाया।
गुरु का भेजा नगरी आया ॥ २ ॥
चेतहु नगरी तारहु गाँव।
अलख पुरुष का सुमिरहु नाँव ॥ ३ ॥

अवज्ञातोऽपि बालादिशब्दैर्मंस्वा स्ववाधंकम्।
प्रत्युवाच प्रसन्नः श्रीश्रीचन्द्रो मात्रया गिरा ॥ ३३ ॥
भावना प्राग्भवोत्थाऽथ यदहर्विरजेद्विधिः।
मताऽत्र लेखशब्दस्य तन्त्रेणार्थद्वयी गुरोः ॥ ३४ ॥
तन्नुन्नमुपसन्नं मां यथाविधि स्वमुण्डितम्।
सद्‌गुरुरुपदिश्येदं नगरीं प्रैपयत्ततः ॥ ३५ ॥
नगरीग्रामवास्तव्यांश्चेतय वत्स ! तारय।
स्मर स्मारय चालक्ष-पूरुषनाम सन्ततम् ॥ ३६ ॥
बोध्यतेऽनेन कर्तव्यमुदासिनां शुभावहम्।
भोजनाच्छादनादीनां चिन्ता स्यान्न कदाचन ॥ ३७ ॥

प्रश्न करनेवाले सिद्ध महात्माओं ने अपने को बड़ा-बूढ़ा मानकर 'रे बाल !' आदि अपमानार्थक शब्दों द्वारा आचार्य का निरादर-सा किया था। किन्तु भगवान् श्रीचन्द्र ने प्रसन्न मुद्रा में ही उत्तर दिया ॥ ३३ ॥

'लेख मुँडाया' यहाँ पर 'लेख' शब्द से पूर्वजन्मार्जित संस्कार (अदृष्ट) तथा "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्"—यह विधिवाक्य दोनों ही अर्थ तन्त्र-युक्त्या विवक्षित हैं। एक ही शब्द से अनेक अर्थों की विवक्षा का नाम 'तन्त्र-युक्ति' है। उन दोनों की प्रेरणा से मैं गुरुवर की शरण पहुँचा। अपनी शरण आया देख सद्‌गुरु ने मुझे यथाविधि दीक्षा दी और यह उपदेश देकर भेज दिया कि 'हे वत्स ! नगर एवं ग्राम के निवासियों को ज्ञान-ज्योति प्रदान कर घोर अन्ध महासागर से पार करो एवं स्वयं निरन्तर अलख पुरुष का नाम जपते-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जपाते रहो।' इस प्रकार के उपदेश से आचार्य ने उदासीन मुनियों का परम कर्तव्य सूचित कर दिया है कि अपने भोजन-आच्छादन की भी चिन्ता छोड़कर जनकल्याण-साधन में सतत संलग्न रहना चाहिए ॥ ३४—३७ ॥

गुरु अविनाशी खेल रचाया।
अगम निगम का पन्थ बताया ॥ ४ ॥

क्रीडामाधं जगच्चक्रेऽविनाशी मे गुरुस्तथा।
श्रौतमुपादिशन्मार्गं पुराणं लब्धुमीश्वरम् ॥ ३८ ॥
छन्दोभङ्गभयान्नूनमागमे ह्रस्वता कृता।
मान्योऽथ निगमान्न्यून इत्यपि बोध्यते मया ॥ ३९ ॥
पूर्वप्रयोगशङ्काया उत्तरं तदनित्यता।
क्लेशोऽधिकस्तु सन्धौ स्यात् तज्ज्ञात्यनवबोधिनाम् ॥ ४० ॥
अविनाशिगुरुः शब्द आवृत्याऽर्थद्वयानुगः।
एकः सर्वगुरुस्त्वादिरन्योऽनन्तरदेशिकः ॥ ४१ ॥

मेरे गुरुवर अविनाशी मुनि ने जगत् का खेल रचाया और परमेश्वर की प्राप्ति का वेदसम्मत मार्ग दिखाया। 'अगम निगम का पन्थ बताया' यहाँ पर शुद्ध 'आगम' शब्द के स्थान पर 'अगम' शब्द इसलिए रखा गया है कि छन्दोभङ्ग न हो। निगम (वेद) से आगम (लौकिक शास्त्र) की कक्षा छोटी है—यह भाव व्यक्त करने के लिए भी आचार्य ने आगम शब्द के आकार को ह्रस्व कर अगम पढ़ा है। यहाँ 'अगम निगम' के स्थान पर 'निगमागम' लिखना चाहिए था; क्योंकि आगम की अपेक्षा निगम पूजिततर होने के कारण प्रथम प्रयोक्तव्य है। इस आक्षेप का समाधान 'पूर्व-प्रयोग विधान की अनित्यता' है। दूसरी बात यह है कि 'निगमागम' लिखने पर दोनों शब्दों के मध्य की सन्धि तोड़ने में उन लोगों के लिए महान् क्लेश उपस्थित हो जाता, जो सन्धि-विच्छेद-प्रणाली से अनभिज्ञ हैं। अतः आचार्य ने 'अगम निगम' ही लिखा ॥ ३८—४० ॥

'गुरु अविनाशी' इस वाक्य की आवृत्ति करके दो अर्थ निकलते हैं : प्रथम अर्थ सबगुरु परमेश्वर है और द्वितीय अर्थ आचार्य के गुरुवर अविनाशी मुनि ॥ ४१ ॥

ज्ञान की गोदड़ी ॥ ५ ॥

भेदविद्वेषविध्वंसि ब्रह्म ब्रह्मणि संश्रितम्।
ज्ञानानां वा वरं ज्ञानं कन्था जाड्यापनोदनी ॥ ४२ ॥

भेदात्मक द्वेष का नाशक (अखण्ड) ब्रह्म अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है अथवा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी ज्ञानों में श्रेष्ठ (अहं ब्रह्मास्मि) ज्ञान जीव की जड़ता (अज्ञानरूपी शैत्य) को मिटानेवाली गोदड़ी है ॥ ४२ ॥

खिमा की टोपी ॥ ६ ॥

यत का आड़वन्द ॥ ७ ॥

शीतोष्णाऽमानमानादि द्वन्द्वक्षमा तु टोपिका ।
यतं क्रान्तं यमेर्भावे तदर्थौ नियमा यमाः ।
कटीबन्धः स शास्त्रीयः करणाश्वनियामकः ॥ ४३ ॥

शीत-उष्ण, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों का सहन करना ही टोपी है । 'यत' शब्द 'यम उपरमे' धातु से भाव में 'क्त' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है । उसका अर्थ होता है, यम और नियम । इन्द्रियरूपी घोड़ों के नियामक यम तथा नियम ही हमारा कटिबन्ध (आड़वन्द) है ॥ ४३ ॥

शील लँगोटी ॥ ८ ॥

ब्रह्मण्यता तथा देवपितृभक्तिश्च सौम्यता ।
परोपतापिताऽसूयाशून्यता मृदुता तथा ॥ ४४ ॥
अपारुष्यं च मैत्री च प्रियोक्तिश्च कृतज्ञता ।
शरण्यताऽथ कारुण्यं प्रशान्तिश्चेति विश्रुतम् ॥ ४५ ॥
त्रयोदशविधं शीलं हारीतमुनिनोदितम् ।
मनूक्तं धर्ममूलं तत् कौपीनं चित्तशान्तिदम् ॥ ४६ ॥

हारीत मुनि ने हारीत-स्मृति में जो तेरह प्रकार का शील कहा है—ब्रह्मण्यता, देवपितृभक्ति, सौम्यता, दूसरों को दुःख न देना, ईर्ष्या न करना, मृदुता, कठोरता-निवृत्ति, मैत्री, प्रिय बोलना, कृतज्ञता, शरणागत की रक्षा, करुणा, शान्ति, उन्हींको महर्षि मनु ने धर्म का मूल बताया है । वे ही हमारी कौपीन हैं ॥ ४४–४६ ॥

अकाल खिन्था ॥ ९ ॥

कालस्य काल इत्युक्तो यं माता कोऽपि न क्वचित् ।
भूतो भावी भवन्नास्त्यात्माऽस्तीति धीस्तु कन्थिका ॥ ४७ ॥

काल का भी जो काल कहा जाता है, जिसका माप (नाप) करनेवाला विश्व में कोई भी नहीं; जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों से परे आत्मा है—यही बुद्धि हमारी कन्था है ॥ ४७ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निराश झोली ॥ १० ॥

युक्ति का टोप ॥ ११ ॥

एषणारहितं चेतो भिक्षावस्त्रं सुनिर्मलम् ।
युक्तिर्योगः स्वरूपे स्वे शीर्षवयं मतमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

लोकैषणा, पुत्रैषणा और वित्तैषणा, इन तीनों प्रकार की कामनाओं से शून्य मन ही निर्मल झोली है। युक्ति शब्द का अर्थ होता है, योग। उसे ही हम उत्तम शिर पर रखनेवाला टोप मानते हैं ॥ ४८ ॥

गुरुमुखी बोली ॥ १२ ॥

करणापाटव - भ्रान्ति - वञ्चनादोषहानतः ।
वाणी सर्वगुरोर्वाणी गुरुमुखविनिरसृता ॥ ४९ ॥
शास्त्रेतिहासमर्यादानभिज्ञैर्बुधमानिभिः ।
गुरुमुखीगिराऽत्राऽन्यदीया भाषाऽवबुध्यते ॥ ५० ॥
अन्तरं पण्डितम्मन्यैरज्ञात्वा लिपिभाषयोः ।
बत ! लिप्यर्थशब्देन मुधा वाणी विशिष्यते ॥ ५१ ॥
लिपिविशेषसंज्ञा चेद् गुरुमुखा भवेन्ननु ।
नखमुखात्न संज्ञायां ङ्यभावो नावहेल्यताम् ॥ ५२ ॥

इन्द्रियों की अपटुता, भ्रम, वञ्चकता आदि दोषों से रहित होने के कारण सबगुरु परमेश्वर के मुख से निकली वेद-वाणी ही हमारी बोली है ॥ ४९ ॥

शास्त्र तथा इतिहास-कथित मर्यादाओं से अनभिज्ञ, अपने-आपको बड़ा पण्डित माननेवाले कुछ व्यक्तियों ने यहाँ 'गुरुमुखी' शब्द से पञ्जाबी भाषा समझ रखी है। महान् खेद है कि उन पण्डितम्मन्यों ने लिपि और भाषा का अन्तर न समझकर एक लिपि के वाचक 'गुरुमुखी' शब्द को व्यर्थ में पञ्जाबी भाषा का बोधक मान लिया है। यदि लिपिविशेष की संज्ञा 'गुरुमुखी' शब्द माना जाय, तब 'गुरुमुखी' शब्द न बनकर निःसन्देह 'गुरुमुखा' रूप बनेगा; क्योंकि "नख-मुखान्न संज्ञायाम्" इस पाणिनीय सूत्र से 'ङीप्' का निषेध हो जाता है ॥ ५०–५२ ॥

धर्म का चोला ॥ १३ ॥

सत्य की सेली ॥ १४ ॥

श्रुत्युक्तः साम्यवादो मे मान्यो धर्मोऽस्ति चोलकः ।
कर्मणा मनसा वाचा सत्यं सुन्दरसेलिका ॥ ५३ ॥

वेद-विहित साम्यवादरूप धर्म हमारा चोला है। कर्म से, मन से तथा वाणी से सत्य व्यवहार हमारी सुन्दर सेली है ॥ ५३ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मर्यादा मेखला लै गले मेली ॥ १५ ॥

भ्रूणस्य ब्रह्मणो हत्या परतल्पेषु सङ्गतिः ।
मृषोद्यं पातकं कृत्वा दुष्कर्माणि पुनः पुनः ॥ ५४ ॥
पानं स्तेयं च पापानि सप्त तेषां निवृत्तयः ।
ऋङ्निरुक्तोक्तमर्यादा मेखला मेलिता गले ॥ ५५ ॥

गर्भ गिराना, ब्राह्मण की हत्या करना, पराई स्त्री के साथ सोना, पाप करके झूठ बोलना, बार-बार कुकर्म करना, मद्य-पान, चोरी, ये सात पाप होते हैं। उनकी निवृत्तियाँ भी सात होती हैं। ये ही सात निवृत्तियाँ ऋग्वेद-वर्णित और निरुक्त-कथित सात मर्यादाएँ हैं। उन सात मर्यादाओं की मेखला बनाकर गले में पहनी है ॥ ५४–५५ ॥

ध्यान का बटुआ ॥ १६ ॥

वृत्त्यन्तरं तु हित्वा यत् सततमात्मचिन्तनम् ।
सुस्यूतं बटुकं तन्मे सूचिधानादिधारणम् ॥ ५६ ॥

अनात्म-चिन्तन छोड़कर जो निरन्तर आत्म-चिन्तन है, वही हमारा सूईदान आदि सामग्री रखने का सुन्दर बटुआ है ॥ ५६ ॥

नृत्त का सूइदान ॥ १७ ॥

मदेन धनजात्याद्येर्नृत्तं हित्वा भवार्तिदम् ।
ईशमदेन नृत्तं तु सूचिधानमभीष्टदम् ॥ ५७ ॥
लोपे 'कगच'-सूत्रेण हिन्दाविव च दे कृते ।
शब्दस्य सूचिधानस्य सूइदानं प्रसिद्ध्यति ॥ ५८ ॥

धन, जाति आदि मदों से जन्य संसार-रोग-उत्तेजक नाच को छोड़कर कृष्ण-प्रेम में विभोर होकर नाच उठना ही हमारा अभीष्ट फल-दाता सूईदान है। "कगचजतदपयवां प्रायो लोपः" इस सूत्र से सूचि पद के चकार का लोप हो गया। 'सिन्धु' शब्द के 'ध' को 'द' करके 'हिन्दु' शब्द के समान 'सूचिधान' शब्द के 'ध' को 'द' कर देने पर संस्कृत के सूचिधान शब्द का भाषा में 'सूइदान' रूप बन गया ॥ ५७–५८ ॥

ब्रह्म अञ्चला लै पहिरै सुजान ॥ १८ ॥

बृहत्त्वान्निखिलाधारो मेशस्तद्विश्वबोधिनी ।
साङ्गोपाङ्गश्रुतिश्चेति ब्रह्मशब्देन बोध्यते ॥ ५९ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिदधीत सुज्ञानो ब्रह्मद्वयं सदञ्चलम् ।
परितो धारणं प्राहुस्तदाज्ञापरिपालनम् ॥ ६० ॥

बृहत् होने के कारण प्रपञ्च-सहित माया का आधार परमेश्वर तथा साङ्गोपाङ्ग विश्व-प्रतिपादिका श्रुति दोनों यहाँ 'ब्रह्म' शब्द के वाच्य हैं। उक्त दोनों ब्रह्मपदार्थों का अँचला ज्ञानी धारण करे। उक्त द्विविध ब्रह्म की आज्ञा मानना ही 'धारण करना' कहा जाता है ॥ ५९-६० ॥

बहुरंगी मोरछड़ निर्लेप विष्टी ॥ १९ ॥

मायाभिः पुरुरूपो यो बहुवारं श्रुतीरितः ।
इन्द्रो निर्लेपविष्टिः स मयूरच्छद आश्रितः ॥ ६१ ॥

अपनी माया की विविध शक्तियों का सहारा लेकर अनन्त रूपों में जिसका प्रकट होना श्रुतियों ने बार-बार कहा है, वही जल-कमल की भाँति निर्लिप्त होकर ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा हमारा चँवर है ॥ ६१ ॥

निर्भव जंगडोरा ना को द्विष्टी ॥ २० ॥

स्वपरभेदशून्यत्वाच्छत्रुविरहताऽभया ।
स्थितिर्या हि स मे मान्यो जङ्गडोरः सनातनः ॥ ६२ ॥

अपने-पराये का भेद समाप्त हो जाने के कारण जिस अवस्था में शत्रुभाव बिलकुल नहीं रहता, वह निर्भय स्थिति ही हमारा जंगडोरा है ॥ ६२ ॥

जाप जंगोटा ॥ २१ ॥

यः कालेनानवच्छिन्नः पूर्वेषां गुरुरीरितः ।
मानं यस्यास्ति सार्वज्ञ्यं निरतिशयमुत्तमम् ॥ ६३ ॥
तद्वाचकोम्पदस्यालं जपो यः सार्थभावनः ।
जङ्गोटा स तु विज्ञेयः ओमर्थभावभावनः ॥ ६४ ॥
जागो घञि यजेरादेर्योजः प्राकृत उच्यते ।
जङ्गोटा मेऽस्त्वनुष्ठानं यागस्य स्वस्तिवर्त्मनः ॥ ६५ ॥

जो कालिक परिच्छेद से रहित, हिरण्यगर्भ आदि का भी गुरु कहा गया है, निरतिशय सर्वज्ञता जिसका साधक है, उस ईश्वर के वाचक 'ओम्' पद का अर्थ-ध्यानपूर्वक जप ही जङ्गोटा है। 'जाप जंघोटा' का पाठान्तर 'जाग जंघोटा' भी पाया जाता है। इस पक्ष में 'जाग' का अर्थ याग होता है, क्योंकि प्राकृत भाषा में 'यजि' धातु से 'घञ्' परे होने पर "आदेर्योजः" सूत्र से आरम्भ के यकार को

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जकार होकर 'जाग' रूप सिद्ध होता है। अर्थात् कल्याणप्रद याग का अनुष्ठान करना ही हमारा जंघोटा है॥ ६३–६५॥

सिफत उडानी॥ २२॥

स्फीतं ब्रह्मेति निश्चित्य तद्रूपेणास्य संस्तुतिः।
मनसो वृत्तिरेषा हि शक्तिरुड्डयनी शुभा॥ ६६॥

ब्रह्म सर्वव्यापक है, ऐसा निश्चय करके उसी रूप से उसकी स्तुति करना ही उड्डयिनी (आकाश में उड़ानेवाली) योग-शक्ति है॥ ६६॥

सिंगी शब्द अनाहत गुरुवाणी॥ २३॥

सत्यसंकल्पसत्यस्य वाणीमनाहतां गुरोः।
श्रुतिपरम्परायातां शृङ्गीशब्दं विभावय॥ ६७॥

सत्यसङ्कल्प ईश्वर की श्रुतिरूप वाणी को ही सिंगी का शब्द समझो॥ ६७॥

शर्म की मुद्रा॥ २४॥

शिव विभूता॥ २५॥

कर्णमुद्राऽऽत्मरूपाप्तेः शर्म सुस्सुखमावहा।
मत्वाऽत्र यावनं शब्दं शर्मार्थोऽसाम्प्रतं त्रपा॥ ६८॥
गुरुणा हि स्वशब्देषु देववाणी समीरिता।
शिवसङ्कल्पमित्युक्तो विभूती राजते शुभा॥ ६९॥

आत्मस्वरूप का साक्षात्काररूप सुख ही सुखप्रद कर्ण-मुद्रा है। यहाँ पर 'शर्म' शब्द को फारसी का लज्जार्थक 'शर्म' शब्द मानना उचित नहीं, क्योंकि आचार्य ने अपने प्रयोगों में संस्कृत के ही शब्द रखे हैं। मन का शान्त संकल्प होना ही विभूति है॥ ६८-६९॥

हरिभवित मृगानि लै पहिरै गुरुपूता॥ २६॥

गुरूपदेशपूतो ना हरिभक्तिमृगाजिनम्।
धारयेद्विश्वविख्यातं भक्तिप्रियो हि माधवः॥ ७०॥

गुरु के उपदेश से पवित्र होकर नर भगवद्भक्तिरूप मृगछाला धारण करे, क्योंकि भगवान् को भक्ति अत्यन्त प्रिय होती है॥ ७०॥

सन्तोष सूत विवेक धागे॥ २७॥

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।
सन्तोषो यजुरुक्तोऽयं सूत्राणि मान्त्रिकाणि मे।
सदसतोर्विवेकस्तु तन्तवस्तनुतानिनः॥ ७१॥

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम्" ईशावास्योपनिषद् के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मन्त्र में प्रतिपादित सन्तोष को सूत और आत्मानात्म-विवेक को धागे हम मानते हैं ॥ ७१ ॥

अनेक टल्ली तहाँ लागे ॥ २८ ॥

तस्यां तु ज्ञानकन्थायां संलग्नाः सात्त्विका गुणाः ।
शमादयोऽतिशोभन्ते वस्त्रखण्डा अनेकशः ॥ ७२ ॥

उक्त ज्ञान की गोदड़ी में जुड़े हुए शम, दम आदि सात्त्विक गुण टल्ली यानी पेवन्द फबते हैं ॥ ७२ ॥

सुरति को सुई लै सद्गुरु सीवैं ।
जो राखै सो निर्भउ थीवैं ॥ २९ ॥

सुरतिं सूचिमादाय कन्थां सद्गुरुसीवनाम् ।
परिदधीत यो भक्त्या स भवेन्निर्भयोऽभवः ॥ ७३ ॥

प्रेमरूपी सूई लेकर सद्गुरु द्वारा सिली हुई कन्था को जो भक्तिपूर्वक धारण करता है, भव-भय से वह मुक्त हो जाता है ॥ ७३ ॥

स्याह सफेद जरद सुरखाई ।
जो लै पहिरै सो गुरुभाई ॥ ३० ॥

गुरुशब्दो हि कोशादेर्गुरुपित्रर्थबोधकः ।
गुरुभाईपदस्यात्र मताऽतोऽर्थद्वयी गुरोः ॥ ७४ ॥
गुरुनिमित्तको भ्राता पितृनिमित्तकोऽप्ययम् ।
शाकपार्थिववज्ज्ञेयः समासो नान्यसम्भवः ॥ ७५ ॥
'अज्येष्ठासः' 'स पूर्वेपामि'त्याद्यृक्सूत्रमानतः ।
गुरुभ्रातर एते नो ज्येष्ठाश्चिप्टसमायुपः ॥ ७६ ॥
वर्णाकृतिविभेदेन भिन्ना आर्यादिजातयः ।
समाः समा हि सम्मान्याः परेशैकगुरुत्वतः ॥ ७७ ॥
आस्तिका नास्तिका वापि यस्मिन् कस्मिन्मते स्थिताः ।
सधना निर्धना वा स्युः समा एकगुरुत्वतः ॥ ७८ ॥
वर्णा विप्रादयो वर्णैः श्वेतरक्तोहितपीतकाः ।
श्यामाः शास्त्रसमादिष्टाः समा एकगुरुत्वतः ॥ ७९ ॥
सत्त्वं श्वेतं रजो रक्तं पीतं श्यामस्तमोगुणः ।
तद्वन्तः प्राणिनः सर्वे समा एकगुरुत्वतः ॥ ८० ॥

कोशादि से ज्ञात होता है कि 'गुरु' शब्द दीक्षागुरु एवं पिता—दोनों अर्थों का बोधक होता है । अतः यहाँ 'गुरुभाई' शब्द के दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं—गुरु-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निमित्तक भ्राता अथवा पितृ-निमित्तक भ्राता। 'गुरुभ्राता' शब्द में 'शाकपार्थिव' (शाकप्रियः + पार्थिवः = शाकपार्थिवः) के समान ही मध्यमपदलोपी समास है, अन्य नहीं। "अज्येष्ठासः" (ऋ० ५।५६।६) ऋचा तथा "स पूर्वेषामपि गुरुः" (१।२६) इस योगसूत्र से प्रमाणित होता है कि ये सब आयु में बड़े, छोटे तथा समान व्यक्ति भाई-भाई हैं। रंग, रूप एवं बनावट के भेद से आर्य आदि जातियाँ परस्पर भिन्न होने पर भी समान रूप से माननीय हैं, क्योंकि एक ही परमेश्वर सबका परम पिता है॥ ७४–७७॥

आस्तिक हों या नास्तिक, किसी मत के भी माननेवाले हों, चाहे वे अमीर हों या गरीब; सभी सम्माननीय हैं। शास्त्रों में श्वेत, रक्त, पीत एवं श्याम वर्णों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और श्यामवर्णीय शूद्र कहे गये हैं। ये सभी एक पिता की सन्तान होने से समान माननीय हैं। सत्त्व, रज तथा तमोगुणवाले सभी प्राणियों को एक दृष्टि से देखना चाहिए, क्योंकि ये सब एक ही पिता की सन्तान हैं॥ ७८–८०॥

त्रैगुण चकमक अग्नि मथ पाई।
दुःख सुख धूनी देहि जलाई॥ ३१॥

लौहचक्रादिना घाते यः प्रथिमयतेऽनलम्।
संज्ञाकेर्लोप एषोऽश्मा चकमाकेति कीर्त्यते॥ ८१॥
अश्मानं त्रिगुणं चित्तं मथित्वाऽऽहत्य दीपितम्।
प्राप्तं ज्ञानमयं ब्रह्म ब्रह्माग्निशब्दशब्दितम्॥ ८२॥
दुःखं सुखं च तद्धेतुः कर्माणि विविधान्यतः।
देह एवाग्निकुण्डेऽस्मिन् भस्मसादकृपि द्रुतम्॥ ८३॥
ब्रह्मपुत्रोऽम्बुधिं प्राप्य गतस्ततस्तदात्मताम्।
बीजाभावाद्भवो भावी भूयः सम्भाव्यते नहि॥ ८४॥

लोहे के टुकड़े की चोट पाकर जो पत्थर अग्नि पैदा करता है, उस पत्थर को चकमक या चकमाक कहा जाता है। 'चकमाक' शब्द चक्र-पूर्वक मा धातु से 'क' प्रत्यय करके चक्र के 'र' का लोप कर देने पर सिद्ध होता है॥ ८१॥

त्रिगुणात्मक अन्तःकरणरूपी चकमक को साधनों के अनुष्ठान से शुद्ध कर ध्यानरूपी लोहे का आघात करने पर उसमें से ब्रह्म की अभिव्यक्ति होती है, जिसे वेदों में 'अग्नि' शब्द से पुकारा गया है। उस ज्ञानाग्नि द्वारा शरीररूपी इस धूनी में सुख-दुःख और उनके हेतुभूत अनन्त सञ्चित कर्मों को भस्मसात् कर डाला है॥ ८२-८३॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्चित कर्मों के नष्ट हो जाने पर जैसे ब्रह्मपुत्र नाम का महानद महासागर में मिलकर उसका ही रूप हो जाता है, वैसे ही जीव ब्रह्म का रूप हो जाता है। संसार के बीज समाप्त हो जाने पर फिर कभी संसार संभावित नहीं होता ॥ ८४ ॥

संयम कपाली शोभा धारी।
चरण कमल में सुरति हमारी ॥ ३२ ॥

शोभाधारी कपाली तु सर्वकर्मसु संयमः।
गुर्वविनाशिपादाब्जे सुरतिः सुरतिः सतां ॥ ८५ ॥

सभी व्यवहारों में संयम से काम लेना ही हमारा खप्पर है। अपने गुरुवर अविनाशी मुनि के चरणों में हमारी अगाध श्रद्धा है ॥ ८५ ॥

भाव भोजन अमृत कर पाया।
भला बुरा मन नहीं बसाया ॥ ३३ ॥

भावो हि भोजनं भव्यं प्राप्तममृतसम्मतम्।
रसारससमीक्षा मे मनसि न समागता ॥ ८६ ॥

सद्भाव ही भव्य भोजन है। अर्थात् स्वभावतः जो प्राप्त हो जाता है, उसे अमृत के समान समझता हूँ, मन में स्वादु-अस्वादु का विचार नहीं आता ॥ ८६ ॥

पात्र विचार फरुआ बहुगुणा।
करमण्डल तुम्बा किश्ती घणा ॥ ३४ ॥

पात्रापात्रविचारो हि काष्ठमृत्स्नामयान्यथ।
कुण्डीतुम्ब्यावमत्राणि कर्परादिबहूनि च ॥ ८७ ॥

पात्र-अपात्र का विचार करना ही लकड़ी और मिट्टी के बने हुए कमण्डलु, तुम्बी, खप्पर आदि हैं ॥ ८७ ॥

अमृत प्याला उदक मन दिया।
जो पीवे सो सीतल भया ॥ ३५ ॥

अमृतं ब्रह्ममन्त्रोक्तं पेपीयन्तेऽत्र साधवः।
शुद्धमतो मनस्त्वेतद् ब्रह्मणोऽस्ति प्रियालयः ॥ ८८ ॥
अमृतमुदकं तस्मिन् गुरुदत्तं पिबन्ति ये।
शान्तिभृतजगत्तापा जीवन्मुक्तास्तु सन्ति ते ॥ ८९ ॥

"इदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्"—इस मन्त्र में प्रतिपादित अमृत ब्रह्म का महात्मागण अपने मन में पान किया करते हैं, अतः यह शुद्ध मन ब्रह्म-रस पीने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्याला है। उस प्याले में गुरु द्वारा दिये गये अमृतरूप उदक को जो लोग पिया करते हैं, वे जगत्-ताप शान्त हो जाने पर जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ ८८-८९ ॥

इडा में आवे पिंगला में धावे।
सुषमन के घर सहज समावे ॥ ३६ ॥

विष्णुपदामृतं पीत्वा नाड्येडया यथाविधि।
अन्तः क्षीणं बहिस्तच्च पिङ्गलया प्रवाहयेत् ॥ ९० ॥
प्रतीपं विदधीतापि रुन्ध्यादन्तः सुषुम्नया।
प्राणार्थी गुरुणेयं दिक् प्राणायामस्य दर्शिता ॥ ९१ ॥

इड़ा नाड़ी द्वारा आकाशस्थ वाह्य वायु को विधिपूर्वक पीकर अन्दर कुछ देर रोकें। अन्दर रुकी हुई वायु को पिंगला नाड़ी द्वारा वाहर निकालें। तत्पश्चात् विपरीत क्रम से वायु का पूरण, अवरोध और रेचन करें। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास से सुषुम्ना का द्वार खुल जाने पर सुषुम्ना में वायु चढ़ाकर रोकें ॥ ९०-९१ ॥

निराश मठ निरन्तर ध्यान ॥ ३७ ॥

प्राप्तः स सहजावस्थां निराशमठमाश्रितः।
ध्यायेत्सततमात्मानं समाधिना निरन्तरम् ॥ ९२ ॥

सहजावस्था को प्राप्त होकर निखिल आशाओं से रहित मनरूपी मठ में वास करता हुआ योगी निरन्तर समाधि द्वारा आत्मा का ध्यान करे ॥ ९२ ॥

निर्भै नगरी दीपक गुरुज्ञान ॥ ३८ ॥

श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठश्रीगुर्वात्तबोधदीपिताम्।
स्वपरहेतुर्भीशून्यां पुरीमधिवसेत्ततः ॥ ९३ ॥

परिपक्व समाधि अवस्था में योगी अपने श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान से प्रकाशित अपने-पराये के भेद से रहित एक ब्रह्मपुरी में सदा वास करे ॥ ९३ ॥

स्थिर ऋद्धि अमरपद दण्डा ॥ ३९ ॥

नियमस्थिरतर्द्धिः स्याद् दण्डोऽमरपदस्थितिः।

नियमों की स्थिरता ही ऋद्धि है। अमर पद पर आरूढ़ होना हमारा दण्ड है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धीरज फहुड़ी ॥ ४० ॥

धैर्यं मे काष्ठकुद्दाली पञ्चकोशापसारिणी ॥ ६४ ॥

धैर्य ही हमारी फहुड़ी—लकड़ी की कुदाली है, जिससे हम पञ्चकोशरूपी राख हटाया करते हैं ॥ ६४ ॥

तप कर खण्डा ॥ ४१ ॥

वश कर आसा ॥ ४२ ॥

निगमागमसंसिद्धं तपः खड्गोऽरिकम्पनः ।
करणानां वशीकार आसो दण्डो ममोत्तमः ।
निरस्यतेऽन्तरायोऽत्र आसः करण · अस्यतेः ॥ ६५ ॥

निगमागम-विहित तप पापात्मा शत्रु का हृदय कँपानेवाली तलवार है। इन्द्रियों को वश में करना हमारा दंण्ड (आसः) है। 'असु क्षेपणे' धातु से करण में 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'आस' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है—जिससे विघ्न-बाधाएँ निरस्त की जायें ॥ ६५ ॥

समदृष्टि चउगान । हर्पशोक नहिं मन में आन ॥ ४३ ॥

रागद्वेपावविद्योत्थौ हर्पशोकौ तदाश्रितौ ।
एतद्विश्वं मया दृष्टं समदृष्ट्या निरुद्ध्यते ॥ ६६ ॥
सैकालम्बा चतुर्गाना चउगानं न उत्तमम् ।
कग-सर्वत्र-सूत्राभ्यामत्र अलोप ईरितः ॥ ६७ ॥

अज्ञान से जन्य राग-द्वेप और तदाश्रित हर्प-शोक आदि विपमताएँ समदृष्टि भावना द्वारा मिटायी जा सकती हैं ॥ ६६ ॥

उक्त समदृष्टि हमारी चउगान है। 'चउगान' शब्द संस्कृत के 'चतुर्गान' का अपभ्रंश है। 'चतुर्गान' शब्द के तकार तथा रकार का लोप 'कग' एवं 'सर्वत्र' आदि प्राकृत-सूत्रों द्वारा होकर 'चउगान' शब्द बना है ॥ ६७ ॥

सहज विरागी करे वैराग ।
माया मोहनी सकल त्याग ॥ ४४ ॥

स्वभावतो विरक्तो यां मायां संसृज्य दुःखितः ।
मोहनीं सविलासां तां विसृज्य स्यात्सुखी नरः ॥ ६८ ॥

जिस माया में आसक्त होकर मानव दुःखी होता है, स्वभावतः विरक्त व्यक्ति उस सपरिवार मोहिनी माया को छोड़कर सुखी रहता है ॥ ६८ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम की पाखर ॥ ४५ ॥

देवस्य प्रथमस्याग्नेश्चारु नाम मनामहे ।
जीवेनर्चि प्रतिज्ञातं जपस्तदर्थभावनम् ॥ ९९ ॥
योगसूत्राद्य यौगिक्याः शक्तेर्नामपदस्य च ।
सार्थनाम्नः परेशस्य मननं प्रक्खरः शुभः ॥ १०० ॥
तदेव मननं साधु यत्कर्तुर्गुणकर्मणी ।
ईशस्यैव सदा स्यातां सँलग्ने विश्वशर्मणि ॥ १०१ ॥

"अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम" (ऋग्वेद १।५४।२) इस ऋचा में भगवान् के नाम-जप की प्रतिज्ञा की गयी है। "नम्यते शब्द्यतेऽर्थोऽनेन" इस प्रकार की यौगिक व्युत्पत्ति और "तज्जपस्तदर्थभावनम्" (१।२८) इस योगसूत्र के आधार पर अर्थ-ध्यानपूर्वक नाम का जप करना ही हमारे घोड़े का सुदृढ़ वस्तर है। वही जप-मनन सुन्दर है, जिससे कर्ता के गुण और कर्म सदा ईश्वर के विश्वकल्याणकारी कर्मों में संलग्न रहें ॥ ९९–१०१ ॥

पवन का घोड़ा ॥ ४६ ॥

बाह्यजन्येऽङ्गसदैव मुख्यं पवन आन्तरे ।
तं संसाध्य वशीकुर्युस्तद्विशयं विजिगीषवः ॥ १०२ ॥

जैसे अश्व बाह्य संग्राम का एक महत्त्वशाली अंग है, वैसे आध्यात्मिक युद्ध में प्राण। अतः आध्यात्मिक संग्राम के विजयाभिलाषियों को चाहिए कि प्राणरूपी अश्व को भली प्रकार अपने वश में रखें ॥ १०२ ॥

निःकर्म जीन ॥ ४७ ॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं केशवोऽब्रवीत् ।
जगौ कर्मस्वनासक्तिं पल्ययनं तदर्वतः ॥ १०३ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा है : 'कर्मों के न करने मात्र से पुरुष को निष्कर्मता प्राप्त नहीं होती, निष्काम कर्मानुष्ठान से होती है।' वही उक्त घोड़े की काठी है ॥ १०३ ॥

तत्त्वकर जोड़ा ॥ ४८ ॥

निर्गुण ढाल ॥ ४९ ॥

वस्तु नास्त्यन्तराभावं जगतो भाव ईश्वरः ।
तत्तत्प्रकृतिके स्वेऽत्र परस्तत्त्वं पुरस्कृतम् ।
जोड़ा सैव यतोऽनेन दिष्ट्या जीवोऽत्र जोड्यते ॥ १०४ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्गुणं निष्कलं ब्रह्म फलकोऽस्ति ममोत्तमः ॥ १०५ ॥

सत्ता के बिना कोई वस्तु नहीं होती और जगत् की सत्ता ईश्वर है। अतः यहाँ 'तत्' प्रकृतिक 'त्व' प्रत्यय से परम तत्त्व ईश्वर विवक्षित है। उसी ईश्वर का नाम जोड़ा है, क्योंकि उसके साथ यह जीव अभेद भाव से जोड़ा जाता है ॥ १०४ ॥

निर्गुण-निष्कल ब्रह्म हमारी ढाल है ॥ १०५ ॥

गुरुशब्द कमान ॥ ५० ॥

कुर्वन्नेव यजुर्मन्त्रो वास्तवं कर्मबोधिता।
कार्मुकं गुरुशब्दोऽयं प्रभवन् कर्मणे यतः ॥ १०६ ॥

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि" यह यजुर्मन्त्र ही यहाँ 'गुरु' शब्द से अभिप्रेत है। अतः यही सच्चा धनुष या कार्मुक है, क्योंकि यह कर्म कराने में समर्थ है ॥ १०६ ॥

अकल संजोह ॥ ५१ ॥

ब्रह्म यदष्टमे काण्डे वर्माऽऽहाथर्वणी श्रुतिः।
अविद्यायाः परित्रातृ तनुत्रं वित्त तद्दृढम् ॥ १०७ ॥

अथर्ववेद के अष्टम काण्ड में जिस ब्रह्म को सन्नाह (वर्म) माना गया है, वही अज्ञान-रक्षक हमारा कवच है ॥ १०७ ॥

प्रीति के बाण ॥ ५२ ॥

अकल की बरछी ॥ ५३ ॥

गुणों की कटारी ॥ ५४ ॥

जगति पातनीं प्रीतिं त्यक्त्वेशे सेपुरिष्यते ॥ १०८ ॥
वरच्छीमकलां कुर्याच्छ्यत्यरीन् साधु सा यतः।
विशिनष्टि क्रियामत्र वरो . न कर्मगोचरः।
अभ्यस्यत्वाद्गुणान् कुर्यान्मैत्र्यादींस्तु कटारिकाम् ॥ १०९ ॥

जगत् में गिरानेवाली प्रीति को छोड़कर ईश्वर से प्रीति जोड़ना हमारा बाण है। बुद्धि की बरछी बनानी चाहिए, क्योंकि वह शत्रुओं को भली प्रकार छेदती है। 'वरं छ्यति' इस विग्रह में 'वर' शब्द क्रिया-विशेषण है, छेद क्रियारूप कर्म का वाचक नहीं। बार-बार प्रयोक्तव्य मैत्री आदि गुणों को कटारी माना जाता है ॥ १०८-१०९ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन को मारि करी असवारी ॥ ५५ ॥

मनसो मारयित्वाशु कुरुध्वमश्ववारताम् ।
मनोऽध्याद्यक्षवर्गस्य नूनमत्रोपलक्षणम् ॥ ११० ॥
तेनैतत्तनुदेवानां सुपथि चालनं तथा ।
मनसो मारणा या सा दुस्सङ्कल्पान्निवर्तना ॥ १११ ॥
तदनु शिवसङ्कल्पीकरणमश्ववारता ।
एतदर्थे स्वभावो हि गुरुणोद्घोष्यते स्फुटम् ॥ ११२ ॥
सूत्रे पूर्वापरीभावः सङ्गच्छेतान्यथा कथम् ।
मनोऽस्तु शिवसङ्कल्पं प्रार्थना वेद ईदृशी ।
मृतमग्ने मनो मेऽस्तु नास्ति तस्या विरोधिनी ॥ ११३ ॥

साधको ! मन को मारकर शीघ्र अपने वश में कर लो। इस आज्ञा में 'मन' पद सभी नेत्रादि इन्द्रियों का उपलक्षक है। अतः इन शरीरस्थ देवों अर्थात् इन्द्रियों को सुपथ पर चलाना ही उन पर सवारी करना है। मन को मारने का अर्थ दुःसङ्कल्पों से मन को मोड़ना है। मन को दुःसङ्कल्पों से हटाकर शिवसङ्कल्पी बनाना सवारी करना है। अतः आचार्य ने 'मारण' पद की दुःसङ्कल्प-निवृत्ति और 'सवारी' पद की शिवसंकल्पीकरण में प्रवृत्ति स्पष्ट की है। यदि यहाँ 'मारण' शब्द का अर्थ नष्ट करना माना जाय, तो उक्त सूत्र में पहले मन को मारकर सवारी करने का कथन कैसे संगत होगा ? जो घोड़ा मर-मिट गया, उस पर सवारी कौन कर सकता है ? मन शांत संकल्प हो, इस प्रकार की प्रार्थना भगवान् वेद करता है : हे परमात्मन् ! मेरा मन मर जाय। इस प्रकार की वैदिक प्रार्थना भी उक्त प्रार्थना के विरुद्ध नहीं, क्योंकि मन को मारने का अर्थ मन को दुष्ट प्रवृत्तियों से हटाना ही है ॥ ११०–११३ ॥

विषम गढ़ तोड़ निर्भौ घर आया ।
नौबत शंख नगारा वाया ॥ ५६ ॥

संसारं विषमं दुर्गं भङ्क्त्वाऽऽयं निर्भयं गृहम् ।
शङ्खभेर्यादिकं वाद्यं विजयवादिवादितम् ॥ ११४ ॥

संसाररूपी विषम दुर्ग को तोड़कर अपने अभय पद पर पहुँच गये। शंख, नगाड़ा आदि विजय के बाजे विजेताओं ने बजाये ॥ ११४ ॥

गुरु अविनाशी सूषम वेद ।
निर्वाण विद्या अपार भेद ॥ ५७ ॥

अविनाशी गुरुः सूक्ष्मं स्वसंवेद्यं प्रपश्यति ॥ ११५ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेयं श्रुतौ श्रुता विद्या परा निर्वाणदायिनी ।
विद्योभयविधा प्रोक्ता परापरविभेदतः ॥ ११६ ॥
बहुविधाऽपरा तत्र परा त्वेकत्वमाश्रिता ।
श्रुतिस्तल्लक्षणं प्राह यथाधिगम्यतेऽक्षरम् ॥ ११७ ॥

मुनिवर अविनाशी गुरु अत्यन्त सूक्ष्म, स्वयं संवेद्य परम तत्त्व के द्रष्टा हैं। उनका वही दर्शन वेदों में निर्वाणप्रद परा विद्या के नाम से विश्रुत है। पर और अपर भेद से विद्या दो प्रकार की कही गयी है। उनमें अपरा विद्या अनेक प्रकार की है, किन्तु परा एक ही प्रकार की है। उसका श्रुति ने यह लक्षण किया है—जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म जाना जाता है, वही परा विद्या है ॥ ११५–११७ ॥

अखण्ड जनेऊ ॥ ५८ ॥
निर्मल धोती ॥ ५९ ॥

अखण्डानन्द आत्मा धीः यज्ञसूत्रमनन्तगम् ।
नैर्मल्यं मनसो ज्ञेयं धौतवस्त्रं महात्मनाम् ॥ ११८ ॥

अखण्ड, आनन्दस्वरूप आत्मा मैं हूँ—इस प्रकार की बुद्धि यज्ञोपवीत है। महात्माओं की धोती उनका स्वच्छ अन्तःपटल ही है ॥ ११८ ॥

सोहं जाप सच माल पिरोती ॥ ६० ॥

यदग्ने ! स्यामहं त्वं वा घा स्या अहमृचः श्रुतेः ।
आम्नानमनिशं माला प्रोता सत्या हि वैदिकी ॥ ११९ ॥
तदाम्नानफलीभूतसत्याशिषः प्रसादतः ।
सोऽहंजपस्य माला मे प्रोता सत्या हि याजुषी ॥ १२० ॥

हे देव ! मैं तेरा रूप हो जाऊँ और तू मेरा रूप हो जा, इस प्रकार ऋगर्थ का निरन्तर मनन करना वेद-प्रतिपादित सच्ची माला है ॥ ११९ ॥

उस जप के फलस्वरूप मैं ब्रह्म हो गया। यजुर्वेद-वर्णित "योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि" यह माला भी वैसी ही सुन्दर माला है, इसीका आचार्य ने अपने सूत्र में वर्णन किया है ॥ १२० ॥

सिखा गुरुमन्त्र गायत्री हरिनाम ।
निश्चल आसन कर विश्राम ॥ ६१ ॥

शिखा मे गुरुमन्त्रो या गायत्री हरिनामगी ।
श्रौतं मन्त्रं जपेच्चेमं विश्रम्य निश्चलासने ॥ १२१ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पार्थक्याद् गुरुमन्त्राणां ये द्विषन्ति परस्परम् ।
साम्प्रदायिकविद्वेषं तेषां तं घातुको गुरुः ।
मन्त्रान्तरोपदेशी चेत् प्रत्युत तं प्रवर्धयेत् ।। १२२ ।।

मेरी शिखा मेरा गुरुमन्त्र है। हरिनाम-समन्वित गायत्री ही गुरु-मन्त्र है। निश्चल आसन पर बैठकर इस वैदिक मन्त्र का जप करें ।। १२१ ।।

साम्प्रदायिक गुरुमन्त्रों के भिन्न-भिन्न होने के कारण जो लोग परस्पर द्वेष करने लग जाते हैं, उन लोगों के द्वेष को मिटाने के लिए आचार्य ने किसी नूतन मन्त्र का आविष्कार न करके सनातन श्रौत मन्त्र का ही उपदेश किया। यदि आचार्य नूतन मन्त्र का उपदेश करते, तो वह विद्वेष अधिक बढ़ सकता था ।। १२२ ।।

तिलक संपूर्ण ।। ६२ ।।

चन्दनतिलकेनाशु वासेन वास्यते तनूः ।
वासितं ब्रह्मणा विश्वमुचितं ह्यत्र रूपणम् ।। १२३ ।।

चन्दन के तिलक से जैसे शरीर वासित (सुगन्धित) होता है, वैसे ही ब्रह्म से सम्पूर्ण विश्व वासित है। अतः ब्रह्म को तिलक का रूपक देना उचित ही है ।। १२३ ।।

तर्पण यश ।। ६३ ।।

नृवर्णिसुरभूतानां पितॄणां भोजनादिना ।
तर्पणं वित्त तन्मे यदीशचिन्तनजं यशः ।। १२४ ।।

अतिथि, ब्रह्मचारी, देव एवं अन्य प्राणियों को भोजनादि से तृप्त करना ही हमारे मत में ईश्वर-चिन्तन से उपार्जित यश है ।। १२४ ।।

पूजा प्रेम ।। ६४ ।।

बाह्या पूजैकदेशस्य तत्तोषणी भवेन्न वा ।
विश्वरूपे विभौ प्रेम पूजा स्याद्विश्वतोषणी ।। १२५ ।।

बाह्य पूजा ईश्वर के किसी एक अंश ब्रह्मा आदि से सम्बद्ध है। अतः वह पूर्ण ब्रह्म को प्रसन्न कर सकती है या नहीं, यह सन्देह है। किन्तु विश्वरूप परमेश्वर में साक्षात् प्रेम एक ऐसी पूजा है, जिससे निश्चय ही विश्वात्मा ईश्वर प्रसन्न होता है ।। १२५ ।।

भोग महारस ।। ६५ ।।

ब्रह्मभूतेन वै ब्रह्म भुज्यते रस्यते यतः ।
महारसः स भोगो मे भव्यो विश्वविलक्षणः ।। १२६ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मीभूत तत्त्ववेत्ता के द्वारा ब्रह्मानन्द भोगा जाता है, अतः भव्य, विश्वातीत ब्रह्मरूपी महारस का पान हमारा भोग है ॥ १२६ ॥

निर्वैर सन्ध्या ॥ ६६ ॥

निर्वैरता हि सन्ध्या मे पापपुञ्जप्रणाशिनी ॥ १२७ ॥

वैरभाव का सर्वथा परित्याग ही हमारी पाप-पुञ्जविनाशनी सन्ध्या कही गयी है ॥ १२७ ॥

दर्शन छापा ॥ ६७ ॥

सर्वभूतेष्वहंभाव आत्मनि भूतभावना ।
इति मे दर्शनं छापा निगमागमसङ्गतः ॥ १२८ ॥
छ्यत्यविद्यां विलासान्तामागामिन्याश्च पात्यपि ।
क्विबन्तच्छ्यतिपातिभ्यां छापास्त्वन्वर्थकोऽत्र वै ॥ १२९ ॥

सर्वभूतों में अहंभावना और आत्मा में सर्वभूत-भावना का नाम दर्शन है, यह बात "सर्वभूतस्थमात्मानम्" इस गीता-मन्त्र और "यस्तु सर्वाणि भूतानि" इस श्रुति में प्रसिद्ध है। वही दर्शन हमारा छापा है ॥ १२८ ॥

'छापा' शब्द का अर्थ दर्शन होता है, क्योंकि वह प्रपञ्च-सहित अविद्या का नाशक तथा आगामी अज्ञान से रक्षक होता है। यहाँ 'छो छेदने' और 'पा रक्षणे' इन दो धातुओं से 'क्विप्' प्रत्यय करने पर 'छापा' शब्द बनता है, जो कि अन्वर्थक है ॥ १२९ ॥

वाद विवाद मिटाओ आपा ॥ ६८ ॥

अहन्ताममतायुग्मं नामरूपद्वयं तथा ।
हित्वैतद्गोचरौ वादविवादौ स्यात्स्वयं सुखी ॥ १३० ॥

अहन्ता, ममता और नाम-रूप के वाद-विवाद को मिटाकर मनुष्य सुखी होता है ॥ १३० ॥

पीत पिताम्बर मन मृगछाला ॥ ६९ ॥

य एषोऽभ्यन्तरादित्ये दृश्यते ना हिरण्मयः ।
पीतोऽतः सर्व आभापो छान्दोग्याद्यप्रपाठके ॥ १३१ ॥
भगवद्रूपमर्कस्थं पीताम्बरमतिस्फुटम् ।
तस्मिन्निवेशितं चेतस्तदस्ति मे मृगाजिनम् ॥ १३२ ॥

आदित्य-मण्डल में जो यह हिरण्मय पुरुष दिखाई देता है, वह प्रकाशमय सर्वरूप होने से विश्व का प्रकाशक है, इस प्रकार छान्दोग्य के प्रथम प्रपाठक में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णित आदित्यस्थ भगवद्रूप निखरा हुआ पीताम्बर है। उस रूप में निवेशित चित्त ही हमारी मृगछाला है ॥ १३१-१३२ ॥

चीत चितम्बर रुण झुण माला ॥ ७० ॥

अत्रस्थाम्बरशब्देनाकाशस्य शब्दनं यतः।
माला निरन्तरं चित्ते चिदाकाशस्य चिन्तनम् ॥ १३३ ॥

'चितम्बर' शब्द में स्थित 'अम्बर' शब्द का यहाँ अर्थ आकाश होता है, वस्त्र नहीं; क्योंकि चित्त में चिदाकाश के चिन्तन की माला का लाभ तभी हो सकता है, जब कि अम्बर का अर्थ आकाश किया जाय ॥ १३३ ॥

बुद्धि बघम्बर कुलह पोस्तीन।
खौस खड़ावाँ इह मति लीन ॥ ७१ ॥

व्याघ्राम्बरं च तोप्युच्चा सह रोमस्वगम्बरम्।
पादुके काष्ठचर्मीये बुद्धिरेव चिदात्मनि ॥ १३४ ॥

चिदात्मा में स्थित बुद्धि ही बाघम्बर है, ऊँची टोपी है, रोमवाला वस्त्र है, खड़ाऊँ एवं जूता है ॥ १३४ ॥

खौस खड़ावाँ इह मति लीन ॥ ७२ ॥

विनापि प्रत्ययं लोपः पूर्वोत्तरसुबन्तयोः।
अतोऽत्र कोशशब्देन पञ्चकोशा उदाहृताः ॥ १३५ ॥
स्वार्थेऽणि च तथा वृद्धौ कौश इत्यभिधीयते।
प्राकृते प्राकृतं सूत्रं "शषोः स" दन्त्यसो मतः ॥ १३६ ॥
अनुप्रासस्य लोभेन द्वितीयो वर्ण उच्यते।
भवमतिर्विलीना मे पूर्वोदितविचारतः।
परमार्थमतिर्लीतेस्याद्वृत्याऽर्थद्वयं मतम् ॥ १३७ ॥

विना प्रत्यय के भी पूर्व और उत्तर के सुबन्त पदों का लोप हो, इस व्याकरण-नियम के अनुसार 'पञ्चकोश' शब्द के 'पञ्च' पद का लोप होकर 'कोश' शेष रहा, उसीका अपभ्रंश 'खौस' है। अतः यहाँ 'खौस' शब्द से पञ्च कोशों का उल्लेख किया गया है। 'कोश' शब्द का 'खौस' इस प्रकार बनता है : 'कोश' शब्द से स्वार्थ में 'अण्' हुआ। 'अण्' के परे रहते आदिम अच् को वृद्धि होकर 'कौश' शब्द बना। प्राकृत शब्दों के साधन में प्राकृत सूत्र लगते हैं। प्राकृत व्याकरण में "शषोः सः" इस सूत्र से कौश का कौस बना। जैसे 'विभीषण' शब्द

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के साथ अनुप्रास भिड़ाने के लिए 'राभण'-विभीषण कह दिया जाय, वैसे ही 'खड़ावाँ' के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'खौस खड़ावाँ' कह दिया गया। 'इहि मति लीन' के दो अर्थ होते हैं : (१) पूर्वोक्त आत्मविचार से अनात्मबुद्धि विलीन हो गयी। (२) पूर्वोक्त विचार से आत्मबुद्धि प्रकट हो गयी। उक्त दोनों अर्थ 'इहि मति लीन' वाक्य की आवृत्ति करके, दो बार उसका पाठ करके निकाले जाते हैं ॥ १३५–१३७ ॥

तोड़ा चूड़ा और जँजीर।
लै पहिरे साधु उदासी धीर ॥
जटा जूट मुकुट सिर होइ।
मुक्ता फिरे बन्ध नहि कोइ ॥ ७३ ॥

तोड़ादिकमुदासीनो जटाजूटं च धारयेत्।
यत्किञ्चिदिष्टवेशो वा विचरेन्मुण्डमुण्डितः ॥ १३८ ॥

उदासीन साधु तोड़ा-सहित जटाजूट धारण करें अथवा मुण्डित होकर विचरें ॥ १३८ ॥

नानकपूता श्रीचन्द बोले।
जुगत पछाणे तत्त्व विरोले ॥ ७४ ॥

अनेकात्मैक्यधीभक्तिपूतात्मा ना श्रिया शशी।
प्रतारणाद्यसंसृष्टो प्राह्यवाक्यो अवीम्यहम् ॥ १३ ॥
गोभिः श्रीणीत रे शाकर इत्यादौ वेदलोकयोः।
असत्त्वे तद्धितस्यापि तदर्थस्त्ववबुद्ध्यते ॥ १४० ॥
एवं नानकशब्देन नानकीयोऽन्वयो मतः।
स पूतो यत्प्रभावात्स नानकपूतशब्दितः ॥ १४१ ॥
एतदर्थावगत्यै सो बहुव्रीहिरिहादृतः।
प्राचामर्थविबोधाय युक्ता पूतपरस्थितिः ॥ १४२ ॥
समवैतु गुरोर्युक्ति तत्त्वात्तत्त्वं विलोडतु।
तत्त्वमित्थमवाप्नोतूदासीनः साधुरुस्थितः ॥ १४३ ।

'नानकपूतः' शब्द की सन्धि पृथक् करने पर 'ना + अनकपूतः' बनता है। 'ना' शब्द का अर्थ नर और अनकपूतः का अर्थ अभेद भक्ति द्वारा पवित्र होता है। इस प्रकार 'नानकपूतः श्रीचन्द बोले' का अर्थ होता है — भक्तिपूतमानव

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं श्रीचन्द्र वञ्चनादि दोषों से रहित एवं ग्राह्यवाक्य होकर बोलता हूँ। अथवा 'नानकपूतः' का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि "गोभिः श्रीणीत मत्सरम्" (ऋ० ९।४६।४) इस ऋक्‌वाक्य में 'गो' शब्द के उत्तर तद्धित प्रत्यय के न होने पर भी 'गो' का अर्थ गव्य=दुग्ध किया जाता है एवं "रे शाक!" इस लौकिक सम्बोधन में 'शाक' पद का शाकवाला अर्थ माना जाता है। इसी प्रकार यहाँ 'नानक' शब्द का अर्थ नानकीय वंश अभीष्ट है। वह नानकीय वंश पवित्र हो गया है जिसके प्रभाव से, ऐसा श्रीचन्द्र बोलता है। इस अर्थ की प्राप्ति के लिए ही 'नानकपूतः' शब्द में बहुव्रीहि समास माना जाता है। यहाँ शङ्का होती है कि बहुव्रीहि समास मानने पर 'पूतनानकः' शब्द बनना चाहिए, क्योंकि "निष्ठा" इस पाणिनीय सूत्र से पूत शब्द का प्रयोग पहले होगा। इस शंका का समाधान यह है कि प्राचीन महापुरुषों का नानक-पुत्र अर्थ भी सूचित करने के लिए 'पूत' पद पश्चात् रखा है। 'जुगत पछाणे तत्त्व विरोले' का अर्थ होता है, आचार्य द्वारा उपदिष्ट युक्तियों का सहारा लेकर उदासीन मुनि तत्त्वातत्त्व की छानबीन करें॥ १३९–१४३॥

ऐसी मात्रा लै पहिरे कोय।
आवागमन मिटावे सोय॥ ७५॥

यः श्रुत्वाऽधीत्य मत्वेदङ्मात्रां परिदधीत तु।
नैजरूपमवाप्तोऽसौ यानायाने निषेधतु॥ १४४॥

जो व्यक्ति इस मात्राशास्त्र का श्रवण, मनन कर उसे धारण कर ले, वह व्यक्ति आत्मस्वरूप को प्राप्त कर आवागमन के चक्कर से छूट जाता है॥ १४४॥

सदर्थरत्नसम्पूर्णा भावप्रभासमुज्ज्वला।
भूषयन्ती श्रुतिस्वान्ते मात्रा गुरुप्रसादतु॥ १४५॥

सच्चे रत्नों से भरपूर सद्भावरूपी प्रभा से युक्त श्रोत्र या अन्तःकरण को विभूषित करती हुई मात्राशास्त्र की वाणी गुरु-प्रसाद बन जाय॥ १४५॥

एकैकशो नैकरहस्यभाञ्जि
श्रौतार्थसन्दोहसुधान्वितानि।
आकाङ्क्ष्यवार्णामधुमिश्रितानि
चपन्तु सूत्राण्यपवर्गदानि॥ १४६॥

अनेक रहस्य-सूचक, वैदिक अर्थरूपी सुधा में सने हुए, आकांक्षादि अंगों से युक्त वाणी के मधु से मधुमय, अपवर्गप्रद प्रत्येक सूत्र का आस्वादन करें॥ १४६॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न विस्मरेद्विष्णुसुरूपरामं
स्वकीयरूपे रमतां सदायम् ।
दयान्वितः सद्गुरुराम आख्यद्
रामस्वरूपेति समाख्यया यम् ॥ १४७ ॥

श्रीदेवयानाख्यकपद्धतिर्यो
लतालयग्रामकृताधिवासः ।
सोऽहं व्यधां श्रीशशिभावबोधीं
प्रसादिनीं नाम मनःप्रसादीम् ॥ १४८ ॥

यह (भावप्रसादिनी व्याख्या के कर्ता) अपने गुरुभाई पण्डित विष्णुदासजी को कभी नहीं भूल सकता। मेरे सद्गुरु दयारामजी ने जिसका नाम रामस्वरूप रखा, जिसकी पद्धति देवयान (दीवाना) है तथा जो 'लताला' ग्राम का अधिवासी है, उस मैंने (पं० रामस्वरूप ने) श्रीचन्द्र भगवान् के भावों को भली प्रकार बतानेवाली 'भावप्रसादिनी' व्याख्या की है ॥ १४७—१४८ ॥

दिग्दर्शिकेयं तु कृतिर्मदीया
व्याख्यां विदध्युर्बृहतीं बुधेन्द्राः ।
गुरूपदेशेन दिशः प्रकाश्य
लभ्योऽविलम्बं स्वगुरुप्रसादः ॥ १४९ ॥

यह मेरी कृति केवल दिग्दर्शन मात्र है। इस मात्राशास्त्र की बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ तो पण्डितगण लिखेंगे। आशा है कि उन पण्डितगणों का मैं केवल मार्ग-दर्शन करके आचार्य की अनुकम्पा प्राप्त कर लूँगा ॥ १४९ ॥

भूभृन्नभोव्योमदृगङ्किते़ऽब्दे
श्रीवैक्रमे चैत्रवलक्षपक्षे ।
कुम्भे सटीका मयकाऽर्पि मात्रा
समागतोदासिसुधीसमक्षे ॥ १५० ॥

विक्रम संवत् २००७ चैत्र शुक्लपक्ष में हरिद्वार-कुम्भ-मेला के अवसर पर देश-देशान्तरों से आये उदासीन मुनियों के समक्ष यह सटीक मात्राशास्त्र प्रस्तुत किया गया ॥ १५० ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवस्य कार्ये क्व च न प्रमादः
त्रुटिस्ततोऽत्रेति न मन्यते न ।
क्षमास्ति धर्मो विदुषामनेन
न क्षम्यते नेति न मन्यते न ॥ १५१ ॥

जीव के किस कार्य में प्रमाद नहीं हो जाता ? अतः इस कार्य में मुझसे कोई त्रुटि नहीं रही, यह दावा नहीं किया जा सकता; अवश्य भूलें रही होंगी । फिर भी विद्वानों का क्षमा करना धर्म है, अतः वे मेरी त्रुटियाँ क्षमा नहीं करेंगे, यह कभी नहीं माना जा सकता ॥ १५१ ॥

भावप्रसादिनीव्याख्या श्रुतिसंवादिनी कृता ।
ततः सारमुपादाय कृतेयं भाषया पुनः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्ति-स्थान

१. उदासीन सद्गुरु गङ्गेश्वर जन-कल्याण ट्रस्ट, तुलसी-निवास, तीसरा माला, फ्लैट नं० ३१, डी रोड, चर्च गेट, बम्बई-१
२. उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, ढुण्ढिराज, वाराणसी
३. वेद-मन्दिर, कांकरिया रोड, अहमदाबाद
४. गङ्गेश्वर-धाम, १३, पार्क एरिया, करोलबाग, नयी दिल्ली
५. राम-धाम, निरञ्जनी अखाड़ा रोड, हरिद्वार
६. श्रौतमुनि-निवास, वृन्दावन (मथुरा)
७. डेरा राजवाना खुर्द, पो० राजवाना कला, जि० लुधियाना
८. राम-धाम शिव-मन्दिर, रतनचन्द रोड, अमृतसर
९. गीता-भवन, मनोरमागञ्ज, इन्दौर

जीवन-शिक्षा मुद्रणालय, गोलघर, वाराणसी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha